

सुगमत्वादत्र न किञ्चिद्वक्तव्यमस्ति ।

द्वितीयसंयमस्याध्वाननिरूपणार्थमाह --

परिहार-शुद्धि-संजदा दोसु द्वाणेषु पमत्तसंजद-द्वाणे अप्पमत्त-संजद-द्वाणे १ (परिहारशुद्धिसंयताः

प्रमत्ताप्रमत्ताश्च । स. सि. १.८.) ॥१२६॥

उपरिष्ठात्किमित्ययं संयमो न भवेदिति चेन्न, ध्यानामृतसागरान्तर्निमग्नात्मनां वाचंयमानामुपसंहृतगमनादिकायव्यापाराणां परिहारानुपपत्तेः । प्रवृत्तः परिहरति नाप्रवृत्तस्ततो नोपरिष्ठात्स संयमोऽस्ति२ (मु. ष्ठात्संयमोऽस्ति।) परिहारशुद्धिसंयतः किमु एकयम उत पंचयम इति? किञ्चातो यद्येकयमः सामायिकेऽन्तर्भवति। अथ यदि पंचयमः छेदोपस्थापनेऽन्तर्भवति, न च संयममादधानस्य पुरुषस्य द्रव्यपर्यायार्थिकाभ्यां व्यतिरिक्तस्यास्ति सम्भवस्ततो न परिहारसंयमोऽस्तीति? न, परिहारर्द्धियतिशयोत्पत्त्यपेक्षया ताभ्यामस्य कथञ्चिद्भदात् । तद्रूपापरित्यागेनैव परिहारर्द्धिपर्यायेण परिणत

इस सूत्रका अर्थ सुगम होनेसे यहां कुछ विशेष कहने योग्य नहीं है ।

अब दूसरे संयमके गुणस्थानोंके निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

परिहार -शुद्धि -संयत प्रमत्त और अप्रमत्त इन दो गुणस्थानोंमें होते हैं? ॥१२६॥

शंका -- ऊपरके आठवें आदि गुणस्थानोंमें यह संयम क्यों नहीं होता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, जिनकी आत्माएं ध्यानरूपी अमृतके सागरमें निमग्न है, जो वचन -यम (मौन) का पालन करते हैं और जिन्होंने आने जानेरूप संपूर्ण शरीरसंबन्धी व्यापार संकुचित कर लिया है ऐसे जीवोंके शुभाशुभ क्रियाओंका परिहार बन ही नहीं सकता है। क्योंकि, गमनागमन आदि क्रियाओंमें प्रवृत्ति करनेवाला ही परिहार कर सकता है, प्रवृत्ति नहीं करनेवाला नहीं। इसलिये ऊपरके आठवें आदि ध्यान अवस्थाको प्राप्त गुणस्थानोंमें वह (परिहार-शुद्धि-संयम) नहीं है।

शंका -- परिहार-शुद्धि संयम क्या एक यमरूप है या पांच यमरूप? इनमेंसे यदि एक यमरूप है तो उसका सामायिकमें अन्तर्भाव होना चाहिये और यदि पांच यमरूप है तो छेदोपस्थापनामें अन्तर्भाव हो जाना चाहिये । संयमको धारण करनेवाले पुरुषके द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा इन दोनों संयमोंसे भिन्न तीसरे संयमकी संभावना तो है नहीं, इसलिये परिहार -शुद्धि संयम नहीं बन सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, परिहार ऋद्धिरूप अतिशयकी उत्पत्तिकी अपेक्षा सामायिक और छेदोपस्थानासे परिहार-शुद्धि संयमका कथंचित् भेद है।

शंका -- सामायिक और छेदोपस्थापनारूप अवस्थाका त्याग न करते हुए ही परिहार ऋद्धिरूप पर्यायसे यह जीव परिणत होता है, इसलिये सामायिक और छेदोपस्थापनासे भिन्न

त्वान्न ताभ्यामन्योऽयं संयम इति चेन्न, प्रागविद्यमानपरिहारध्वयपेक्षाया ताभ्यामस्य भेदात्। ततः स्थितमेतत्ताभ्यामन्यः परिहारसंयम इति। परिहारर्द्धरूपरिष्टादपि सत्त्वात्तत्रास्यास्तु सत्त्वमिति चेन्न,

तत्कार्यस्य परिहरणलक्षणस्यासत्त्वतस्तत्र तदभावात्।

तृतीयसंयमस्याध्वानप्रतिपादनार्थमाह--

सुहुम-सांपराइय-सुद्धि-संजदा एकस्मि चैव सुहुम-सांपराइय-सुद्धि-संजद-द्वाने१
(सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयताः एकस्मिन्नेव सूक्ष्मसाम्परायस्थाने । स. सि. १.८.) ॥१२७॥

सूक्ष्मसाम्परायाः किमु एकयमा उत पञ्चयमा इति ? किं चातो, यद्येकयमाः पञ्चयमान् मुक्तिरुपशमश्रेण्यारोहणं वा, सूक्ष्मसाम्परायगुणप्राप्तिमन्तरेण तदुभया-भावात् । अथ पञ्चयमाः एकयमानां पूर्वोक्तदोषौ समाढौकेत्ते । अथोभययमाः,

यह संयम नहीं हो सकता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, पहले अविद्यमान परंतु पीछेसे उत्पन्न हुई परिहार ऋद्धिकी अपेक्षा उन दोनों संयमोंसे इसका भेद है, अतः यह बात निश्चित हो जाती है कि सामायिक और छेदोपस्थापनासे परिहार-शुद्धि-संयम भिन्न ही है।

शंका -- परिहार ऋद्धिकी आगेके आठवें आदि गुणस्थानोंमें भी सत्ता पाई जाती है, अतएव वहां पर इस संयमका सद्भाव मान लेना चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, यद्यपि आठवें आदि गुणस्थानोंमें परिहार ऋद्धि पाई जाती है परंतु वहां पर परिहार करनेरूप उसका कार्य नहीं पाया जाता है, इसलिये आठवें आदि गुणस्थानोंमें परिहार-शुद्धि-संयमका अभाव कहा गया है। अब तीसरे संयमके गुणस्थानका निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं--
सूक्ष्मसांपराय-शुद्धिसंयत जीव एक सूक्ष्मसांपराय-शुद्धि-संयत गुणस्थानमें ही होते हैं ॥१२७॥

शंका -- सूक्ष्मसांपरायसंयत जीव क्या एक यमरूप है अथवा पांच यमरूप? इनमेंसे यदि एक यमरूप हैं तो पंचयमरूप छेदोपस्थापनासंयमसे मुक्ति अथवा उपशमश्रेणीका आरोहण नहीं बन सकता है, क्योंकि, सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानकी प्राप्तिके विना मुक्तिकी प्राप्ति और उपशमश्रेणीका आरोहण नहीं बन सकेगा? यदि सूक्ष्मसांपराय संयत पांच यमरूप है तो एक यमरूप सामायिक संयमको धारण करनेवाले जीवोंके पूर्वोक्त दोनों दोष प्राप्त होते हैं? यदि छेदोपस्थापनासंयतोंको उभय यमरूप मानते हैं तो एक यम और पंचयमके भेदसे सूक्ष्मसांपरायसंयतोंके दो भेद हो जाते हैं?

एकयमपञ्चयमभेदेन सूक्ष्मसाम्परायाणां द्वैविध्यमापतेदिति। नाद्यौ विकल्पौ? अनभ्युपगमात्। न तृतीयविकल्पोक्तदोषः सम्भवति। पञ्चैकयमभेदेन संयमभेदा-भावात्। यद्येकयमपञ्चयमौ संयमस्य न्यूनाधिकभावस्य निबन्धनाव१ (मु. नावेवा।) भविष्यतां संयमभेदोऽप्यभविष्यत्। न चैवम्, संयमं प्रति द्वयोरविशेषात्। ततो न सूक्ष्मसाम्पराय-संयमस्य तद्द्वारेण द्वैविध्यमिति। तद्द्वारेण संयमस्य द्वैविध्याभावे पञ्चविधसंयमो-पदेशः कथं घटत् इति चेन्मा घटिष्ट। तर्हि कतिविध संयमः? चतुर्विधः पञ्चमस्य संयमस्यानुपलम्भात्। सुगममन्यत्।

चतुर्थसंयमस्याध्वानप्रतिपादनार्थमाह --

जहाक्खाद-विहार-सुद्धि-संजदा चदुसु द्वाणेषु उवसंत-कसाय- वीयराय-छदुमत्था खीण-कसाय-वीयराय- छदुमत्था सजोगिकेवली अजोगिकेवली चि२ (यथाख्यातविहारशुद्धिसंयताः उपशान्तकषायादयो- ऽयोगकेवलयन्ताः। स.सि. १.८.) ॥१२८॥

समाधान -- आदिके दो विकल्प तो ठीक नहीं हैं, क्योंकि, वैसा हमने माना नहीं है। इसी प्रकार तीसरे विकल्पमें दिया गया दोष भी संभव नहीं है, क्योंकि, पंचयम और एकयमके भेदसे संयममें कोई भेद ही संभव नहीं है। यदि एकयम और पंचयम संयमके न्यूनाधिकभावके कारण होते तो संयममें भेद भी हो जाता। परंतु ऐसा है नहीं, क्योंकि, संयमके प्रति दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है। अतः सूक्ष्मसांपराय संयमके उन दोनोंकी अपेक्षा दो भेद नहीं हो सकते हैं।

शंका -- जब कि उन दोनोंकी अपेक्षा संयमके दो भेद नहीं हो सकते हैं तो पांच प्रकारके संयमका उपदेश कैसे बन सकता है?

समाधान -- यदि पांच प्रकारका संयम घटित नहीं होता है तो मत होओ?

शंका -- तो संयम कितने प्रकारका है?

समाधान -- संयम चार प्रकारका है, क्योंकि, पांचवा संयम पाया ही नहीं जाता है। शेष कथन सुगम है।

विशेषार्थ -- सामायिक और छेदोपस्थापना संयममें विवक्षा भेदसे ही भेद है वास्तवमें नहीं, अतः ये दोनों मिलकर एक और शेषकेतीन इसप्रकार संयम चार प्रकारके होते हैं।

अब चौथे संयमके गुणस्थानोके प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं --

यथाख्यात-विहार-शुद्धि-संयत जीव उपशान्त-कषाय-वीतराग छद्मस्थ, क्षीणकषाय-वीतराग-छद्मस्थ,
सयोगिकेवली और अयोगिकेवली इन चार गुणस्थानोंमें होते हैं ॥१२८॥

सुगमत्वान्नात्र वक्तव्यमस्ति ।

देशविरतगुणस्थानप्रतिपादनार्थमाह--

संजदासंजदा एककम्मि चेय संजदासंजद-द्वाणे १ (संयतासंयता एकस्मिन्नेव संयतासंयतस्थाने ।

स. सि. १.८.) ॥१२९॥

सुगममेतत् ।

असंयतगुणस्य गुणस्थानप्रमाणनिरूपणार्थमाह--

असंजदा एइंदिय-प्पहुडि जाव असंजदसम्माइडि ति २ (असंयताः आद्येषु चतुर्षु गुणस्थानेषु । स.

सि. १.८.) ॥१३०॥

मिथ्यादृष्ट्योऽपि केचित्संयता दृश्यन्त इति चेन्न, सम्यक्त्वमन्तरेण संयमानुपपत्तेः । सिद्धानां कः संयमो भवतीति चेन्नैकोऽपि । यथा बुद्धिपूर्वकनिवृत्तेरभावान्न संयतास्तत एव न संयतासंयताः नाप्यसंयताः प्रणष्टाशेषपापक्रियत्वात् ।

संयमव्दारेण जीवपदार्थमभिधाय साम्प्रतं दर्शनमुखेन जीवसत्तानिरूपणार्थमाह--

दंसणाणुवादेण अत्थि चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी ओधि-दंसणी केवलदंसणी चेदि ३ (भावचक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमाद् द्रव्येन्द्रियानुपघाताच्च चक्षुर्दर्शननिश्चक्षुर्दर्शनलब्धिमतो) ॥१३१॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम होनेसे यहां विशेष कुछ कहने योग्य नहीं है।

अब देशविरत गुणस्थानके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

संयतासंयत जीव एक संयतासंयत गुणस्थानमें ही होते हैं ॥१२९॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है।

अब असंयतगुणके गुणस्थानोंके प्रमाणके निरूपण करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

असंयत जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानतक होते हैं ॥१३०॥

शंका -- कितने ही मिथ्यादृष्टि जीव संयत देखे जाते हैं?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, सम्यग्दर्शनके बिना संयमकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है।

शंका -- सिद्ध जीवोंके कौनसा संयम होता है?

समाधान -- एक भी संयम नहीं होता है। उनके बुद्धिपूर्वक निवृत्तिका अभाव होनेसे जिसलिये वे संयत नहीं हैं, इसलिये संयतासंयत नहीं है और असंयत भी नहीं है, क्योंकि, उनके संपूर्ण पापरूप क्रियाएं नष्ट हो चुकी हैं।

संयममार्गणाके द्वारा जीव-पदार्थका कथन करके अब दर्शनमार्गणाके द्वारा जीवोंके अस्तित्वके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शनके धारण करनेवाले जीव होते हैं ॥१३१॥

चक्षुषा सामान्यस्यार्थस्य ग्रहणं चक्षुर्दर्शनम्। अथ स्याद्विषयविषयिसम्पात-
समनन्तरमाद्यग्रहणमवग्रहः न तेन बाह्यार्थगतविधिसामान्यं परिच्छिद्यते, तस्या वस्तुनः कर्मत्वाभावात्।
अविषयीकृतप्रतिषेधस्य ज्ञानस्य विधौ प्रवृत्तिविरोधात्। विधिः १ (मु. विधेः।) प्रतिषेधाद् व्यावृत्तो
गृह्यतेऽव्यावृत्तो वा? आद्ये न विधिसामान्यग्रहणम् प्रतिषेधेन सह विध्युपादानात्। द्वितीये न च
तद्विधिग्रहणम्, २ (मु. द्वितीये न तद्धि ग्रहणं।) विधिप्रतिषेधोभयग्रहणे तस्यान्तर्भावात्। न
बाह्यार्थगतप्रतिषेधसामान्यमपि परिच्छिद्यते विधिपक्षोक्तदोष-दूषितत्वात्। तस्माद्विधिनिषेधात्मकवा
ह्यार्थग्रहणमवग्रहः। न स दर्शनम्, सामान्य-

चक्षुके द्वारा सामान्य पदार्थकेग्रहण करनेको चक्षुदर्शन कहते हैं ।

शंका -- विषय और विषयीके योग्य संबन्धके अनन्तर प्रथम ग्रहणका नाम अवग्रह है। उस अवग्रहके द्वारा बाह्य अर्थमें रहनेवाले विधि-सामान्यका ज्ञान तो हो नहीं सकता है, क्योंकि, बाह्य अर्थमें रहनेवाले विधि-सामान्यका ज्ञान तो हो नहीं सकता है, क्योंकि, बाह्य अर्थमें रहनेवाला विधि सामान्य अवस्तु है इसलिये वह कर्म अर्थात् ज्ञानका विषय नहीं हो सकता है। दूसरे जिस ज्ञानने प्रतिषेधको विषय नहीं किया है उसकी विधिमें प्रवृत्ति माननेमें विरोध आता है। इसलिये विधिका प्रतिषेधसे व्यावृत्त होकर ग्रहण होता है या अव्यावृत्त होकर ग्रहण होता है? प्रथम विकल्पके मानने पर केवल विधिसामान्यका ग्रहण तो बन नहीं सकता है, क्योंकि प्रतिषेधके साथ ही विधिका ग्रहण होता है। तथा दूसरे विकल्पके मानने पर उसे केवल विधिग्रहण नहीं कह सकते, क्योंकि विधि और प्रतिषेध इन दोनोंके ग्रहणमेंही प्रतिषेधसे अव्यावृत्त विधिका अन्तर्भाव हो जाता है। इसी प्रकार बाह्य अर्थमें रहनेवाले प्रतिषेधसामान्यका भी ग्रहण नहीं बन सकता है, क्योंकि, विधि पक्षमें जो दोष दे आये हैं वे सब यहां पर भी लागू पडते हैं। इसलिये विधि निषेधात्मक बाह्य पदार्थके अवग्रह

जीवस्य घटादिषु द्रव्येषु चक्षुषा दर्शनं चक्षुर्दर्शनम् । सामान्यविषयत्वेऽपि चास्य यद् घटादिविशेषाभिधानं तत्सामान्यविशेषयो कथञ्चिदभेदादेकान्तेन विशेषेभ्यो व्यति रिक्तस्य सामान्यग्रहणख्यापनार्थम् । उक्तं च निर्विशेषं विशेषाणां ग्रहो दर्शनमुच्यतेऽ इत्यादि । चक्षुर्वर्जशेषेन्द्रियचतुष्टयं मनश्चाचक्षुरुच्यते, तस्य दर्शने न चक्षुर्दर्शनं, तदपि भावचक्षुरिन्द्रियावरणक्षयोपशमाद् द्रव्येन्द्रियानुपघाताच्च अचक्षुर्दर्शनिनोऽचक्षुर्दर्शनलब्धमतो जीवस्यात्मभावे भवति । XX इदमुक्तं भवति, चक्षुरप्राप्यकारि, ततो दूरस्थमपि स्वविषयं परिच्छिनतीति । XX श्रोत्रादीनि तु प्राप्यकारीणि, ततो द्रव्येन्द्रियसंश्लेषद्वारेण जीवेन सह सम्बद्धमेव विषयं परिच्छिन्दन्तीत्येतद्दर्शनार्थमात्मभावि भवति । XX अवधेर्दर्शनमवधिदर्शनम् । अवधिदर्शनिनोऽवधिदर्शनावरण-क्षयोपशमसमुद्भूतावधिदर्शनलब्धमतो जीवस्य सर्वरूपिद्रव्येषु भवति, न पुनः सर्वपर्यायेषु । यतोऽवधेरुत्कृष्टतोऽप्येकवस्तुगता संख्येया वा पर्याया विषयत्वेनोक्ताः । XX ननु पर्याया विशेषा उच्यन्ते, न च दर्शनं विशेषविषयं भवितुमर्हति ज्ञानस्यैव तद्विषयत्वात् कथमिहावधिदर्शनविषयत्वेन पर्यायाः निर्दिष्टाः? साधूक्तं, केवलं पर्यायैरपि घटशरावोदञ्चनादिभिर्मृदादिसामान्यमेव तथा तथा विशिष्यते न पुनस्तेन एकान्तेन व्यतिरिच्यन्ते, दर्शनं, केवलदर्शिनस्तदावरणक्षयाविर्भूततल्लबहिसतो

जीवस्य सर्वद्रव्येषु मूर्तामूर्तेषु सर्वपर्यायेषु च अतस्तद्दर्शनं नोक्तमिति । अनु . (अभि. रा. को .
दंसणगुणप्पमाण.)

ग्रहणस्य दर्शनव्यपदेशात् । ततो न चक्षुर्दर्शनमिति ।

अत्र प्रतिविधीयते, नैते दोषाः दर्शनमाढौकन्ते, तस्यान्तरङ्गार्थविषयत्वात् । अन्तरङ्गार्थोऽपि सामान्यविशेषात्मक इति । तद्विधिप्रतिषेधसामान्ययोरुपयोगस्य क्रमेण प्रवृत्त्यनुपपत्तेरक्रमेण तत्रोपयोगस्य प्रवृत्तिरङ्गा कर्तव्या । तथा च न सोऽन्तरङ्गोपयोगोऽपि दर्शनम्, तस्य सामान्यविशेषविषयत्वादिति चेन्न, सामान्यविशेषात्मकस्यात्मनः सामान्यशब्दवाच्यत्वेनोपादानात् । तस्य कथं सामान्यतेति चेदुच्यते-चक्षुरिन्द्रियक्षयोपशमो हि नाम रूप एव नियमितस्ततो रूपविशिष्टस्यैवार्थग्रहणस्यो-पलम्भात् । तत्रापि रूपसामान्य एव नियमितः, ततो नीलादिष्वेकरूपेणैव विशिष्ट-वस्त्वनुपलम्भात् । तस्माच्चक्षुरिन्द्रियक्षयोपशमो रूपविशिष्टार्थं प्रति समानः, आत्मव्यतिरिक्तक्षयोपशमाभावादात्मापि तद्द्वारेण समानः, तस्य भावः सामान्यम्, तद्दर्शनस्य विषय इति स्थितम् ।

अथ स्याच्चक्षुषा यत्प्रकाशते तद्दर्शनम् । न चात्मा चक्षुषा प्रकाशते,

मानना चाहिये । परंतु वह अवग्रह दर्शनरूप तो हो नहीं सकता है, क्योंकि जो सामान्यको ग्रहण करता है उसे दर्शन कहा है । अतः चक्षुदर्शन नहीं बनता है?

समाधान -- ऊपर दिये गये सब दोष दर्शनको नहीं प्राप्त होते हैं, क्योंकि, वह अन्तरंग पदार्थको विषय करता है और अन्तरंग पदार्थ भी सामान्य-विशेषात्मक होता है । इसलिये विधिसामान्य और प्रतिषेधसामान्यमें उपयोगकी क्रमसे प्रवृत्ति नहीं बनती है, अतः उनमें उपयोगकी अक्रमसे प्रवृत्ति स्वीकार करना चाहिये । अर्थात् दोनोंका युगपत् ही ग्रहण होता है ।

शंका -- इस कथनको मान लेने पर भी वह अन्तरंग उपयोग दर्शन नहीं हो सकता है, क्योंकि, उस अन्तरंग उपयोगका सामान्यविशेषात्मक पदार्थ विषय मान लिया है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, यहांपर सामान्यविशेषात्मक आत्माका सामान्य शब्दके वाच्यरूपसे ग्रहण किया है ।

शंका -- उसको सामान्यपना कैसे है?

समाधान -- चक्षु इन्द्रियावरणका क्षयोपशम रूपमें ही नियमित है। इसलिये उससे रूपविशिष्ट ही पदार्थका ग्रहण पाया जाता हैं। वहांपर भी चक्षुदर्शनमें रूपसामान्य ही नियमित है, इसलिये उससे नीलादिकमें किसी एक रूपके द्वारा ही विशिष्ट वस्तुकी उपलब्धि नहीं होती है। अतः चक्षु इन्द्रियावरणका क्षयोपशम रूपविशिष्ट अर्थके प्रति समान है। और आत्माको छोडकर क्षयोपशम पाया नहीं जाता है इसलिये आत्मा भी क्षयोपशमकी अपेक्षा समान है। और उस समानके भावको सामान्य कहते हैं। वह दर्शनका विषय है।

शंका -- चक्षु इन्द्रियसे जो प्रकाशित होता है उसे दर्शन कहते हैं। परंतु आत्मा तो चक्षु इन्द्रियसे प्रकाशित होता नहीं, क्योंकि, चक्षु इन्द्रियसे आत्माकी उपलब्धि होती हुई नहीं देखी जाती है। चक्षु इन्द्रियसे रूपसामान्य और रूपविशेषसे युक्त पदार्थ प्रकाशित

तथानुपलम्भात्। प्रकाशते च रूपसामान्यविशेषविशिष्टोऽर्थः^१(मु विशिष्टार्थ।) न स दर्शनम्, अर्थस्योपयोगरूपत्वविरोधात्। न तस्योपयोगोऽपि दर्शनम्, तस्य ज्ञानरूपत्वात्। ततो न चक्षुर्दर्शनमिति? न, चक्षुर्दर्शनावरणीयस्य कर्मणोऽस्तित्वान्यथानुपपत्तेः, आचार्याभावे आवारकस्या २ (मुराचार्याभावे आधारकस्या।) प्यभावात्। तस्माच्चक्षुर्दर्शनमन्तरङ्गाविषयमित्यङ्गीकर्तव्यम्। किं च निद्रानिद्रादीनि कर्माणि न ज्ञानप्रतिबन्धकानि, ज्ञानावरणाभ्यन्तरे तेषामपाठात्। नान्तरङ्गबहिरङ्गार्थविषयोपयोगसामान्यद्वयप्रतिबन्धकानि, जाग्रदवस्थायां छन्मस्थ-ज्ञानदर्शनोपयोगयोर-क्रमेण वृत्तिप्रसंङ्गात्। ततो दर्शनावरणीयकर्मणोऽस्ति त्वान्यथानुपपत्तेरन्तरङ्गार्थविषयोप-योगप्रतिबन्धकं दर्शनावरणीयम्, बहिरङ्गार्थविषयो-पयोगप्रतिबन्धकं ज्ञानावरणमिति प्रतिपत्तव्यम् आत्मविषयोपयोगस्य दर्शनत्वेऽङ्गीक्रियमाणे आत्मनो विशेषाभावाच्चतुर्णामपि दर्शनानामविशेषः स्यादिति चेन्नैष दोषः, यद्यस्य ज्ञानस्योत्पादकं स्वरूपं पसंवेदनं तस्य तद्दर्शनव्यपदेशान्न दर्शनस्य चातुर्विध्य-

होता है। परंतु पदार्थ तो उपयोगरूप हो नहीं सकता, क्योंकि, पदार्थको उपयोगरूप माननेमें विरोध आता है। पदार्थका उपयोग भी दर्शन नहीं हो सकता है, क्योंकि, वह उपयोग ज्ञानरूप पडता है। इसलिये चक्षुदर्शनका अस्तित्व नहीं बनता है।

समाधान -- नहीं, क्योंकि, यदि चक्षुदर्शन नहीं हो तो चक्षुदर्शनावरण कर्म नहीं बन सकता है, क्योंकि, आवार्यके अभावमें आवारकका भी अभाव हो जाता है। इसलिये अन्तरंग पदार्थको विषय करनेवाला चक्षुदर्शन है यह बात स्वीकार कर लेना चाहिये। दूसरे निद्रानिद्रा आदि कर्म ज्ञानके प्रतिबन्धक नहीं हैं, क्योंकि, ज्ञानावरण कर्मके भेदोंमें इन निद्रानिद्रा आदि कर्मोंका पाठ नहीं है। तथा निद्रानिद्रा आदि कर्म अन्तरंग और बहिरंग पदार्थोंको विषय करनेवाले दोनों उपयोगोंके भी प्रतिबन्धक नहीं है, क्योंकि, ऐसा मानने पर भी निद्रानिद्रादिकका ज्ञानावरणकेभीतर ही अन्तर्भाव होना चाहिये था। परंतु ऐसा नहीं है, अतः निद्रानिद्रादिक दोनों उपयोगके भी प्रतिबन्धक नहीं हैं। निद्रानिद्रादिक अन्तरंग और बहिरंग पदार्थोंको विषय करनेवाले उपयोग सामान्यके भी प्रतिबन्धक नहीं हैं, क्योंकि, ऐसा मान लेने पर जाग्रत् अवस्थामें छद्मस्थके ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगकी युगपत् प्रवृत्तिका प्रसंग आ जायगा। इसलिये दर्शन यदि न हो तो दर्शनावरण कर्मका अस्तित्व सिद्ध नहीं हो सकता है। अतः अन्तरंग पदार्थको विषय करनेवाले उपयोगका प्रतिबन्धक दर्शनावरण कर्म है और बहिरंग पदार्थको विषय करनेवाले उपयोगका प्रतिबन्धक, ज्ञानावरण कर्म है ऐसा जानना चाहिये।

शंका -- आत्माको विषय करनेवाले उपयोगको दर्शन स्वीकार कर लेनेपर आत्मामें कोई विशेषता नहीं होनेसे नहीं चारों दर्शनोंमें भी कोई भेद नहीं रह जायगा?

समाधान -- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जो जिस ज्ञानका उत्पन्न करनेवाला

नियमः। यावन्तश्चक्षुरिन्द्रियक्षयोपशमजनितज्ञानस्य विषयभावमापन्नाः पदार्थास्तावन्त एवात्मस्थक्षयोपशमास्तत्तन्ना- मानस्तद्द्वारेणात्मापि तावानेव, तच्छक्तिखचितात्मपरिच्छित्तिर्दर्शनम्। न चैतत्काल्पनिकं परमार्थत एव परोपदेशमन्तरेण शक्त्या सहात्मनः उपलम्भात् । न दर्शनानामक्रमेण प्रवृत्तिर्ज्ञानानामक्रमेणोत्पत्त्य भावतस्तदभावात् । एवं शेषदर्शनानामपि वक्तव्यम् । ततो न दर्शनानामेकत्वमिति उक्तं च --

चक्खूणं जं पयासदि दिस्सदि तं चक्खुं दंसणं वेत्ति ।

सेसिदिय प्पयासो णादब्बो सो अचक्खु ति१ (प्रा. पं. १, १३९। गो. जी. ४८४.) ॥१९५॥

परमाणु आदियाइं अंतिम खंधं ति मुत्ति-द्व्वाइं ।

तं ओधि -दंसणं पुण जं पस्सइ ताइं पच्चक्खर (प्रा. पं। १, १४०। गो. जी. ४८५) ॥ १९६ ॥

वहुविह बहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्हि खेतम्हि ।

लोगालोग अतिमिरो जो केवलदंसणुज्जोवो३ (प्रा. पं. १,१४१। गो. जी. ४८६.) ॥ १९७ ॥

स्वरूपसंवेदन है उसको उसी नामका दर्शन कहा जाता है। इसलिये दर्शनके चार प्रकारके होनेका कोई नियम नहीं है। चक्षु इन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए ज्ञानके विषयभावको प्राप्त जितने पदार्थ हैं उतने ही आत्मामें स्थित क्षयोपशम उन उन संज्ञाओंको प्राप्त होते हैं। और उनके निमित्तसे आत्मा भी उतने ही प्रकारका हो जाता है। अतः इस प्रकारकी शक्तियोंसे युक्त आत्माके आत्मा भी उतने ही जाता है। यह सब कथन काल्पनिक भी नहीं है, क्योंकि, परोपदेशके विना अनेक शक्तियोंसे युक्त आत्माकी परमार्थसे उपलब्धि हाती है। सभी दर्शनोंकी अक्रमसे प्रवृत्ति होती है सो बात भी नहीं है, क्योंकि, ज्ञानोंकी एकसाथ उत्पत्ति नहीं होती है, अतः संपूर्ण दर्शनोंकी भी एकता अर्थात् अभेद सिद्ध नहीं हो सकता है। कहा भी है---

जो चक्षुइन्द्रियके द्वारा प्रकाशित होता है अथवा दिखाई देता है उसे चक्षुदर्शन कहते हैं। तथा शेष इन्द्रिय और मनसे जो प्रतिभास होता है उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं ॥१९५॥

परमाणुसे आदि लेकर अन्तिम स्कन्धपर्यन्त मूर्त पदार्थोंको जो प्रत्यक्ष देखता है उसे अवधिदर्शन कहते हैं ॥१९६॥

अपने अपने अनेक प्रकारके भेदोंसे युक्त बहुत प्रकारके प्रकाश इस परिमित क्षेत्रमें ही पाये जाते हैं। परंतु जो केवल दर्शनरूपी उद्योत है वह लोक और अलोकको भी तिमिर रहित कर देता है ॥१९७॥

चक्षुदर्शनाध्वानप्रतिपादनार्थमाह --

चक्खु-दंसणी चउरिंदिय-प्पहुडि जाव खीण-कसाय-वीयराय छदुमत्था ति ॥१३२॥

सुगममेतत् ।

अचक्षुदर्शनस्याधिपतिप्रतिपादनार्थमाह--

अचक्खु-दंसणी एइंदिय-प्पहुडि जाव खीण-कसाय-वीयराय छदुमत्था ति १ (दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनाचक्षुदर्शनयोर्मिथ्यादृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति । स. सि. १.८.) ॥१३३॥

दृष्टार्थः (मु. दृष्टान्तः) स्मरणमचक्षुर्दर्शनमिति केचिदाचक्षते तन्न घटते एकेन्द्रियेषु चक्षुर-
भावतोऽचक्षुर्दर्शनस्याभावासञ्जनात् ३(मु. सञ्जननात्)। दृष्टशब्द उपलम्भवाचक इति चेन्न,
उपलब्धार्थविषयस्मृतेर्दर्शनत्वेऽङ्गीक्रियमाणे मनसो निर्विषयतापत्तेः। ततः स्वरूप-संवेदनं
दर्शनमित्यङ्गीकर्तव्यम् ।

ज्ञानमेव द्विस्वभावं किन्न स्यादिति चेन्न, स्वस्मादिभन्न

अब चक्षुदर्शनसंबन्धी गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं--

चक्षुदर्शन उपयोगवाले जीव चतुरिन्द्रियसे लेकर क्षीणकषाय-छन्नस्थ-वीतराग गुणस्थान तक होते हैं
॥१३२॥

इसका अर्थ सरल है।

अब अचक्षुदर्शनके स्वामी बतलानेकेलिये सूत्र कहते हैं--

अचक्षुदर्शन उपयोगवाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर क्षीणकषाय-वीतराग छन्नस्थ गुणस्थान होते तक होते हैं
॥१३३॥

दृष्टार्थ अर्थात् देखे हुए पदार्थका स्मरण करना अचक्षुदर्शन है, इस प्रकार कितने ही पुरुष कहते हैं।
परंतु उनका ऐसा कहना घटित नहीं होता है, क्योंकि, ऐसा माननेपर एकेन्द्रिय जीवोंमें चक्षुइन्द्रियका
अभाव होनेसे उनके अचक्षुदर्शनके अभावका प्रसंग आ जायगा।

शंका -- दृष्टान्तमें घृष्टशब्द उपलम्भवाचक ग्रहण करना चाहिये?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, उपलब्ध पदार्थको विषय करनेवाली स्मृतिको दर्शन स्वीकार कर लेनेपर
मनको विषय रहितपनेकी आपत्ति आजाती है। इसलिये स्वरूप संवेदन दर्शन है ऐसा स्वीकार कर लेना
चाहिये।

शंका-- ज्ञान ही दो स्वभाववाला क्यों नहीं मान लिया जाता है?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, अपनेसे भिन्न वस्तुका परिच्छेदक ज्ञान है और अपनेसे अभिन्न वस्तुका
परिच्छेदक दर्शन है, इसलिये इन दोनोंमें एकपना नहीं बन सकता है।

वस्तुपरिच्छेदकं ज्ञानम्, स्वतोऽभिन्नवस्तुपरिच्छेदकं दर्शनम्, ततो नानयोरेकत्वमिति । ज्ञानदर्शनयोरक्रमेण प्रवृत्तिः किन्न स्यादिति चेत् किमिति न भवति? भवत्येव, क्षीणावरणे द्वयोरक्रमेण प्रवृत्त्युपलम्भात् । भवतु छन्नस्थावस्थायामप्यक्रमेण क्षीणावरणे इव तयोः प्रवृत्तिरिति चेन्न, आवरणनिरुद्धा (मु. आवरणनिरुद्धा ।) क्रमयोरक्रमवृत्तिविरोधात् । अस्वसंविद्रूपो न कदाचिदप्यात्मोपलभ्यत इति चेन्न, बहिरङ्गोपयोगावस्थाया मन्तरङ्गोपयोगानुपलम्भात् । श्रुतदर्शनं किमिति नोच्यत इति चेन्न, तस्य मतिपूर्वकस्य दर्शनपूर्वकत्वविरोधात् । यदि बहिरङ्गार्थसामान्यविषयं दर्शनमभविष्यत्तदा श्रुतदर्शनमपि (मु. श्रुतज्ञानदर्शनमपि) । समभविष्यत् ।

अवधिदर्शनप्रदेशप्रतिपादनार्थमाह--

ओधि -दंसणी - असंजदसम्माइडि- प्पहुडि जाव खीण - कसाय वीयराय छदुमत्था ति३ (अवधिदर्शने असंयतसम्यदृष्ट्यादीनि क्षीणकषायान्तानि । स. सि. १.८.) ॥१३४॥

शंका-- ज्ञान और दर्शनकी युगपत् प्रवृत्ति क्यों नहीं होती?

समाधान-- कैसे नहीं होती, होती ही है, क्योंकि, जिनके आवरण कर्म नष्ट हो गये हैं ऐसे तेरहवें आदि गुणस्थानवर्ती जीवोंमें ज्ञान और दर्शन इन दोनोंकी युगपत् प्रवृत्ति पाई जाती है ।

शंका-- आवरणकर्मसे रहित जीवोंमें जिस प्रकार ज्ञान और दर्शनकी युगपत् प्रवृत्ति पाई जाती है, उसी प्रकार छन्नस्थ अवस्थामें भी उन दोनोंकी एक साथ प्रवृत्ति होओ?

समाधान-- नहीं यों कि, आवरणकर्मके उदयसे जिनकी युगपत् प्रवृत्ति करनेकी शक्ति रुक गई है ऐसे छन्नस्थ जीवोंके ज्ञान और दर्शनमें युगपत् प्रवृत्ति माननेमें विरोध आता है ।

शंका-- अपने आपके संवेदनसे रहित आत्माकी तो कभी उपलब्धि नहीं होती है?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, बहिरंग पदार्थोंकी उपयोगरूप अवस्थामें अन्तरंग पदार्थका उपयोग नहीं पाया जाता है ।

शंका-- श्रुतदर्शन क्यों नहीं कहा?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, मतिज्ञानपूर्वक होनेवाले श्रुतज्ञानको दर्शनपूर्वक माननेमें विरोध आता है । दूसरे यदि बहिरंग पदार्थको सामान्यरूपसे विषय करनेवाला दर्शन होता तो श्रुतदर्शनभी होता । परंतु ऐसा नहीं है, इसलिये श्रुतज्ञानके पहले दर्शन नहीं होता है ।

अब अवधिदर्शनसंबन्धी गुणस्थानोंके प्रतिपादन करनेकेलिये सूत्र कहते हैं--

अवधिदर्शनवाले जीव असंयत सम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुण-

सुगममेतत् । विभङ्गदर्शनं किमिति पृथग् नोपदिष्टमिति चेन्न, तस्यावधि दर्शनेऽन्तर्भावात् ।

मनःपर्ययदर्शनं तर्हि वक्तव्यमिति चेन्न, मतिपूर्वकत्वात्तस्य दर्शनाभावात् ।

केवलदर्शनस्वामिप्रतिपादनार्थमाह -

केवलदंसणी तिसु द्वाणेषु सजोगिकेवली अजोगिकेवली सिद्धा चेदि १ (केवलदर्शने सयोगकेवली अयोगकेवली च । स.सि. १.८.) ॥१३५॥

अनन्तत्रिकालगोचरबाह्येऽर्थे प्रवृत्तं केवलज्ञानं, स्वात्मनि त्रिकालगोचरे प्रवृत्तं केवलदर्शनम् २ (मु. (स्वतोऽभिन्नवस्तुपरिच्छेदकं च दर्शनमिति)) । कथमनयोः समानतेति चेत्कथ्यते । ज्ञानप्रमाणमात्मा, ज्ञानं च त्रिकाल-गोचरान्तद्रव्यपर्यायपरिमाणं ततो ज्ञानदर्शनयोः समानत्वमिति । स्वजीवस्थपर्यायैर्ज्ञानादर्शनमधिकमिति चेन्न, इष्टत्वात् । कथं पुनस्तेन तस्य समानत्वम्? न, अन्योन्यात्मकयोस्तदविरोधात् । उक्तं च--

स्थान तक होते हैं ॥१३४॥

इस सूत्रका अर्थ सुगम है ।

शंका-- विभंगदर्शनका पृथकरूपसे उपदेश क्यों नहीं किया?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, उसका अवधिदर्शनमें अन्तर्भाव हो जाता है ।

शंका-- तो मनःपर्ययदर्शनको भिन्न रूपसे कहना चाहिये?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, मनःपर्ययज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है, इसलिये मनःपर्यय-दर्शन नहीं होता है ।

अब केवलदर्शनके स्वामीके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

केवलदर्शनके धारक जीव सयोगिकेवली, अयोगिकेवली और सिद्ध इन तीन स्थानोंमें होते हैं ॥१३५॥

शंका-- त्रिकालगोचर अनन्त बाह्य पदार्थोंमें प्रवृत्ति करनेवाला केवलज्ञान है और त्रिकालगोचर स्वात्मा में प्रवृत्ति करनेवाला केवलदर्शन है, इसलिये इन दोनोंमें समानता कैसे हो सकती है?

समाधान-- आत्मा ज्ञानप्रमाण है और ज्ञान त्रिकालकेविषयभूत द्रव्योंकी अनन्त पर्यायोंको जाननेवाला होनेसे तत्परिमाण है, इसलिये ज्ञान और दर्शनमें समानता है।

शंका-- जीवमें रहनेवाली स्वकीय पर्यायोंकी अपेक्षा ज्ञानसे दर्शन अधिक है?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, यह बात इष्ट ही है।

शंका-- फिर ज्ञानकेसाथ दर्शनकी समानता कैसे हो सकती है?

आदा णाण-पमाणं णाणं णेय प्पमाणमुद्धिट्ठं ।

णेयं लोआलोअं तम्हा णाणं तु स्व्व-गय १ (प्रवच. १.

२३.)॥१९८॥

एय -दवियम्मि जे अत्थ पज्जया वयण वयण पज्जया

वावि ।

तीदाणागय भूदा तावदियं तं हवइ दव्व २ (गो. जी.

५८२. स. त. १. ३३.) ॥१९९॥ इदि

लेश्याद्वारेणजीवपदार्थसत्त्वान्वेषणायाह--

लेस्साणुवादेण अत्थि किण्हलेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया तेउलेस्सिया

पम्मलेस्सिया सुक्कलेस्सिया अलेस्सिया चेदि ॥१३६॥

लेश्या इति किमुक्तं भवति? कर्मस्कन्धैरात्मानं लिम्पतीति लेशया ३ (लिश्यते प्राणी कर्मणा यया सालेश्या। यदाह, श्लेष इव वर्णबन्धस्य कर्मबन्धस्थितिविधान्त्र्यः। स्था. १. ठा ज्ञा.। लिश्यते शिलष्यते कर्मणा सह आत्मा अनयेति लेश्या। कर्म . ४. कर्म। कृष्णादिद्रव्य-साचिव्यात्परिणामो य आत्मनः। स्फटिकस्येव तत्रायं लेश्याशब्दः प्रवर्तते ॥१॥ प्रज्ञा. १७. पद (अभि. रा. को. लेस्सा.))। कषायानुरञ्जितैव योगप्रवृत्तिर्लेश्येति नात्र परिगृह्यते, सयोगकेवलिनोऽलेस्यत्वापत्तेः। अस्तु चेन्न, घ्शुक्ललेश्यः सयोगकेवलीड इति वचनव्याघातात्। लेश्या नाम योगः

समाधान-- समानता नहीं हो सकती यह बात नहीं है, क्योंकि, एक दूसरेकी अपेक्षा करनेवाले उन दोनोंमें समानता मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है। कहा भी है--

आत्मा ज्ञानप्रमाण है, ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है, ज्ञेय लोकालोकप्रमाण है, इसलिये ज्ञान सर्वगत कहा है
॥१९८॥

एक द्रव्यमें अतीत, अनागत और गाथामें आये हुए अपि शब्दसे वर्तमानपर्यायरूप जितनी अर्थपर्याय और
व्यंजनपर्याय हैं तत्प्रमाण वह द्रव्य होता है ॥१९९॥

अब लेश्यामार्गणाद्वारा जीवपदार्थके अस्तित्वके अन्वेषण करनेके लिये सूत्र कहते हैं--

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या
और अलेश्यावाले जीव हैं ॥१३६॥

शंका-- लेश्या इस शब्दसे क्या कहा जाता है?

समाधान-- जो कर्मस्क्न्धसे आत्माको लिप्त करती है उसे लेश्या कहते हैं ।

यहांपर कषायसे अनुरंजित योगप्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं यह अर्थ नहीं ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि,
इस अर्थके ग्रहण करनेपर सयोगिकेवलीको लेश्यारहितपनेकी आपत्ति प्राप्त होती हैं ।

शंका-- यदि सयोगिकेवलीको लेश्यारहित मान लिया जावे तो क्या हानि है?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, ऐसा मान लेनेपर सयोगिकेवलीके शुक्ललेश्या पाई

कषायस्तावुभौ वा ? किं चातः, नाद्यौ विकल्पौ, योगकषायमार्गणयोरेव तस्या अन्तर्भावात् । न
तृतीयविकल्पस्तस्यापि तथाविधत्वात् । न प्रथमद्वितीयविकल्पोक्तदोषो अनभ्युपगमात् । न
तृतीयविकल्पोक्तदोषोदयोरेकस्मिन्नन्तर्भावविरोदआत् । न द्वित्वमपि,
कर्मलेपैककार्यकर्तृत्वेनैकत्वमापन्नयोर्योगकषाययोर्लेश्यात्वाभ्युपगमात् । नैकत्वात्तयोरन्तर्भवति,
द्वयात्मकैकस्य जात्यन्तरमापन्नस्य केवलेनैकेन सहैकत्वसमान त्वयोर्विरोधात् ।
योगकषायकार्याद्वयतिरिक्तलेश्याकार्यानुपलम्भान्न ताभ्यां पृथग्लेश्यास्तीति चेन्न, योगकषायाभ्यां
प्रत्यनीकत्वाद्यालम्बनाचार्यादिबाह्यार्थसन्निधाने--

जाती है इस वचनका व्याघात हो जाता है ।

शंका-- लेश्या योगको कहते हैं, अथवा, कषायको कहते हैं, या योग है और कषाय दोनोंको
कहते हैं? इनमेंसे आदिके दो विकल्प अर्थात् योग या कषायरूप लेश्या तो मान नहीं सकते, क्योंकि, वैसा

माननेपर योगमार्गणा और कषायमार्गणामें ही उसका अन्तर्भाव हो जायगा। तीसरा विकल्प भी नहीं मान सकते हैं, क्योंकि, तीसरा विकल्प भी आदिके दो विकल्पोंके समान है। अर्थात् तीसरे विकल्पके माननेपर भी लेश्याका उक्त दोनों मार्गणाओंमें अथवा किसी एक मार्गणामें अन्तर्भाव हो जाता है। इसलिये लेश्याकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं होती है?

समाधान-- शंकाकारने जो ऊपर तीन विकल्प उठाये हैं उनमेंसे पहले और दूसरे विकल्पमें दिये गये दोष तो प्राप्त नहीं होते हैं, क्योंकि, लेश्याको केवल योग और केवल कषायरूप माना ही नहीं है। उसी प्रकार तीसरे विकल्पमें दिया गया दोष भी प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, योग और कषाय इन दोनोंका किसी एकमें अन्तर्भाव माननेमें विरोध आता है। यदि कहा जाय कि लेश्याको दोरु प मान लिया जाय जिससे उसका योग और कषाय इन दोनों मार्गणाओंमें अन्तर्भाव हो जायगा, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, कर्मलेपरूप एक कार्यको करनेवाले होनेकी अपेक्षा एकपनेको प्राप्त हुए यग और कषायरूप लेश्या माना है। यदि कहा जाय कि एकताको प्राप्त हुए योग और कषायरूप लेश्या होनेसे उन दोनोंमें लेश्याका अन्तर्भाव हो जायगा, सो भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, दो धर्मोंके संयोगसे उत्पन्न हुए द्वयात्मक अतएव किसी एक तीसरी अवस्थाको प्राप्त हुए किसी एक धर्मका केवल केवल एकके साथ एकत्व अथवा समानता मान लेनेमें विरोध आता है।

शंका-- योग और कषायकेकार्यसे भिन्न लेश्याका कार्य नहीं पाया जाता है, इसलिये उन दोनोंसे भिन्न लेश्या नहीं मानी जा सकती है?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, विपरीतताको प्राप्त हुए मिथ्यात्व अविरति आदिके आलम्बनरूप आचार्यादि बाह्य पदार्थोंकेसंपर्कसे लेश्याभावको प्राप्त हुए योग और कषायोंसे, केवल योग और केवल कषायकेकार्यसे भिन्न संसारकी वृद्धिरूप कार्यकी उपलब्धि होती

नापन्नलेश्याभावाभ्यां संसारवृद्धिकार्यस्य तत्केवलकार्याद्वयतिरिक्तस्योपलम्भात्। संसारवृद्धिहेतुर्लेश्येति प्रतिज्ञायमाने लिम्पतीति लेश्येत्यनेन विरोधश्चेन्न लेपाविना भावित्वेन तद्वृद्धेरपि तद्वयपदेशाविरोधात्। ततस्ताभ्यां पृथग्भूता लेश्येति स्थितम्। षड्विधः कषायोदयः। तद्यथा, तीव्रतमः तीव्रतरः तीव्रः मन्दः मन्दतरः मन्दतम इति। एतेभ्यः षड्भ्यः कषायोदयः। तद्यथा, तीव्रतमः तीव्रतरः तीव्रः मन्दः मन्दतरः

मन्दतम इति । एतेभ्यः षड्भ्यः; कषायोदयेभ्यः । परिपाट्या षड् लेश्या भवन्ति । कृष्णलेश्या नीललेश्या कपोतलेश्या तेजोलेश्या १ (मु. कापोतलेश्या पीतलेश्या ।) पद्मलेश्या शुक्ललेश्या चेति । उक्तं च--

चंडो ण मुयदि वेरं भंडण-सीलो य धम्म-दय रहिओ ।

दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेदं तु किण्हस्स २ (प्रा. पं. १,१४४. । गो. जी. ५०९. पंचासवप्पवत्तो तीहिं अगुत्ती छसुं अविरअी य । तिच्चारम्भपरिणओ खुड्डो साहसिओ नरो । निद्धसपरिणामो निस्संसो अजिइंदिओ । एयजोगसमाउत्तो किण्हलेसं तु परिणमे । उक्त . ३४. २१-२२.) ॥२००॥

मंदो बुद्धि- विहीणो णिव्विण्णाणी य विसय-लोलो य ।

माणी मायी य तहा आलस्सो चेय भेज्जो य ३ (प्रा. पं. १,१४५ । गो. जी. ५१०.) ॥२०१॥

है जो केवल योग और केवल कषायका कार्य नहीं कहा जा सकता है-इसलिये लेश्या उन दोनोंसे भिन्न है यह बात सिद्ध हो जाती है ।

शंका -- संसारकी वृद्धिका हेतु लेश्या है ऐसी प्रतिज्ञा करनेपर 'जो लिप्त करती है उसे लेश्या कहते हैं' इस वचनके साथ विरोध आता है?

समाधान -- नहीं, क्योंकि, कर्मलेपकी अविनाभावी होनेरु पसे संसारकी वृद्धिको भी लेश्या ऐसी संज्ञा देनेसे कोई विरोध नहीं आता हैं । अतः उन दोनोंसे पृथग्भूत लेश्या है यह बात निश्चित हो जाती हैं ।

कषायका उदय छह प्रकारका होता है । वह इसप्रकार है, तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर और मन्दतम । इन छह प्रकारके कषायके उदयसे उत्पन्न हुई परिपाटीक्रमसे लेश्या भी छह हो जाती हैं-- कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या कहा भी है--

तीव्र, क्रोध करनेवाला हो, वैरको न छोडे, लडना जिसका स्वभाव होज, धर्म और दयासे रहित हो, दुष्ट हो और जो किसीके वशको प्राप्त न हो ये सब कृष्णलेश्यावालेके लक्षण है ॥२००॥

मन्द अर्थात् स्वच्छन्द हो अथवा काम करनेमें मन्द हो, वर्तमान कार्य करनेमें विवेक रहित हो, कला-चातुर्यसे रहित हो, पांच इन्द्रियोंके स्पर्शादि बाह्य विषयोंमें लम्पट हो, मानी हो, मायावी हो, आलसी हो, और भीरु हो, ये सब भी कृष्णलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥२०१॥

गिह्वा-वंचण-बहुलो धण-धण्णे होइ तिव्व-सण्णो य ।

लक्खणमेदं भणियं समासदो णील-लेस्सस्स १ (प्रा. पं. १,१४६। गो .जी. ५११. इस्सा अमरिस अतवो
अविज्जमाया अहीरिया । गेही पओसे य सढे पमत्ते रसलोलुए। सायगवेसए य आरंभाओ अविरओ खुड्डो
साहस्सिओ नरो । एयजोगसमाउत्तो नीललेसं तु परिणमे ॥उत्त. ३४. २३-२४.) ॥२०२॥

रूसदि णिंददि अण्णे दूसदि बहुसो य सोय-भय बहुलो ।

असुयदि परिभवदि परं पसंसदि य अप्पयं बहुसो २ (प्रा. पं. १,१४७ । गो.जी.५१२) ॥२०३॥

ण य पत्तियइ परं सो अप्पाणं पि व परं पि मण्णंतो ।

तूसदि अभित्थुवंतो ण य जाणइ हाणि वड्ढीओ३ (प्रा. पं. १,१४८। गो. जी. ५१३) ॥२०४॥

मरणं पत्थेइ रणे देदि सुबहुअं हि थुव्वमाणो दु ।

ण गणइ अकज्ज-कज्जं लक्खणमेदं तु काउस्स ४ (प्रा. पं. १,१४९। गो. जी. ५१४. वंकेवंकसमायारे
नियडिल्ले अणुज्जुए । पलिउंचगओवाहिए मिच्छादिट्ठी अणारिए । उप्फासगदुड्डुवाई य तेणे यावि य
मच्छरी । एयजोगसमाउत्तो काऊलेसं तु परिणमे । उत्त. ३४. २५-२६.) ॥२०५॥

जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं च सव्व सम -पासी ।

दय-दाण-रदो य मिदू लक्खणमेदं तु तेउस्स ५ (प्रा. पं. १,१५०। गो.जी. ५१५. नीयावत्ती अचवले अमाई
अकुऊहले । विणीयविणए दते जोगवं उवहाणवं । पियधम्मे दंडधम्मे वज्जभीरू हिएसए ।
एयजोगसमाउत्तो तेऊलेसं तु परिणमे। उत्त. ३४. २७-२८.) ॥२०६॥

जो अतिनिद्रालु हो, दूसरोंको ठगनेमें अतिदक्ष हो, और धन-धान्यकेविषयमें जिसकी अति तीव्र लालसा
हो, ये सब नीललेश्यावालेकेसंक्षेपसे लक्षण कहे गये हैं ॥२०२॥

जो दूसरोंकेऊपर क्रोध करता है, दूसरेकी निन्दा करता है, अनेक प्रकारसे दूसरोंको दुःख देता है,
अथवा, दूसरोंको दोष लगाता है, अत्यधिक शोक और भयसे व्याप्त रहता है, दूसरोंको सहन नहीं करता
है, दूसरोंका पराभव करता है, अपनी नाना प्रकारसे प्रशंसा करता है, दूसरेकेऊपर विश्वास नहीं करता
है, अपने समान दूसरेको भी मानता है, स्तुति करने-वालेकेऊपर संतुष्ट हो जाता है, अपनी और
दूसरेकी हानि और वृद्धिको नहीं जानता है, युद्धमें मरनेकी प्रार्थना करता है, स्तुति करनेवालेको बहुत

धन दे डालता है, और कार्य अकार्यकी कुछ भी गणना नहीं करता है, ये सब कापोतलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥२०३-२०५॥

जो कार्य-अकार्य और सेव्य-असेव्यको जानता है, सबके विषयमें समदर्शी रहता है, दया और दानमें तत्पर रहता है, और मन, वचन तथा कायसे कोमल परिणामी होता है ये सब पीतलेश्यावालेके लक्षण हैं

॥२०६॥

चागी भदो चोक्खो उज्जुव-कम्मो य खमइ बहुअं पि ।

साहु-गुरु-पूजण-रदो १ (मु. पूजणिरदो ।) लक्खणमेदं तु पम्मस्स २ (प्रा. पं. १,१५१। गो. जी. ५१६.
पयणुकोहमाणे य मायालोभे य पयणुए । पसंतचित्ते दंतप्पा जोगवं उवहाणवं ॥ तहा पयणुवाई य उवसते
जिइंदिए । एयजोगसमाऊत्तो पम्हलेसं तु परिणमे ॥ उत्त. ३४.२९-३०.) ॥२०७॥

ण उ कुणइ पक्खवायं ण वि य णिदाणं समो य सब्बेसु ।

णत्थि य राय-दोसा ३ (मु. राय-दोसो ।) णेहो वि य सुक्क-लेस्सस्स ४ (प्रा. पं. १,१५२। गो. जी. ५१७.
अट्टरुद्याणि वजित्ता धम्मसुक्काणि ज्ञायए । पसंतचित्ते दंतप्पा समिए गुत्ते य गुत्तिसु ॥ सरागे वीयरारो वा
उवसंते जिइंदिए । एयजोगसमाउत्तो सुक्कलेसं तु परिणमे ॥ उत्त. ३४. ३१-३२.) ॥२०८॥

षड्लेश्यातीताः अलेश्याः । उक्तं च--

किण्हादि-लेस्स-रहिदा संसार-विणिग्गया अणंत-सुहा ।

सिद्धि-पुरं संपत्ता अलेस्सिया ते मुणेयव्वा ५ (प्रा. पं. १,१५३ गो. जी. ५५६.) ॥२०९॥

लेश्यानां गुणस्थाननिरुपणार्थमाह--

किण्हेस्सिया णीललेस्सिया काउलेस्सिया एइंदिय-प्पहुडि जाव असंजद-सम्माइट्टि ति ६ (लेश्यानुवादेन
कृष्णनीलकपोतलेश्यासु मिथ्यादृष्ट्यादीनि असंयतसम्यग्दृष्टयन्तानि सन्ति । स. सि. १. ८.) ॥१३७॥

जो त्यागी है, भद्रपरिणामी है, निर्मल है, निरन्तर कार्य करनेमें उद्यत रहता है, जो अनेक प्रकारके कष्टप्रद और अनिष्ट उपसर्गोंको क्षमा कर देता है, और साधु तथा गुरुजनोंकी पूजामें रत रहता है, ये सब पद्मलेश्यावालेके लक्षण हैं ॥२०७॥

जो पक्षपात नहीं करता है, निदान नहीं बांधता है, सबके साथ समान व्यवहार करता है, इष्ट और अनिष्ट पदार्थोंके विषयमें राग और द्वेषसे रहित है तथा स्त्री, पुत्र और मित्र आदिमें स्नेहरहित है ये सब शुक्ललेश्यावालेके लक्षण हैं ॥२०८॥

जो छह लेश्याओंसे रहित है उन्हें लेश्यारहित जीव कहते हैं। कहा भी है--

जो कृष्णादि लेश्याओंसे रहित हैं, पंच परिवर्तनरूप संसारसे पार हो गये हैं, जो अतीन्द्रिय और अनन्त सुखको प्राप्त हैं और जो आत्मोपलब्धिरूप सिद्धिपुरीको प्राप्त हो गये हैं उन्हें लेश्यारहित जानना चाहिये ॥२०९॥

अब लेश्याओंके गुणस्थान बतलानेकेलिये सूत्र कहते हैं--

कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीव एकेन्द्रियसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानतक होते हैं ॥१३७॥

कथम्? त्रिविधतीव्रादिकषायोदयवृत्तेः सत्त्वात् । सुगममन्यत् ।

तेजः पद्मलेश्याध्वानप्रतिपादनार्थमाह--

तेजलेस्सिया पद्मलेस्सिया सण्णि-मिच्छाङ्घ्रि-प्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा ति ॥१३८॥

कथम्? एतेषां तीव्रादिकषायोदयाभावात् । सुगममन्यत् ।

२ (मु. पाठोऽयं नास्ति ।) शुक्ललेश्याध्वानप्रतिपादनार्थमाह--

शुक्कलेस्सिया सण्णि-मिच्छाङ्घ्रि-प्पहुडि जाव सजोगिकेव्वलित्ति३ (शुक्ललेश्यायां मिथ्यादृष्टयादीनि

सयोगकेव्वल्यन्तानि । स. सि. १. ८.) ॥१३९॥

कथं क्षीणोपशान्तकषायाणां शुक्ललेश्यति चेन्न, कर्मलेपनिमित्तयोगस्य तत्र सत्त्वापेक्षया तेषां

शुक्ललेश्यास्तित्त्वाविरोधात् ।

शंका -- चौथे गुणस्थानतक ही आदिकी तीन लेश्याएं क्यों होती हैं?

समाधान-- तीव्रतम, तीव्रतर और तीव्र कषायके उदयका सद्भाव चौथे गुणस्थानतक ही पाया जाता है, इसलिये वहीतक तीन लेश्याएं कहीं। शेष कथन सुगम है।

अब पीत और पद्मलेश्याके गुणस्थान बतलानेकेलिये सूत्र कहते हैं--

पीतलेश्या और पद्मलेश्यावाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थानतक होते हैं ॥१३८॥

शंका-- ये दोनों लेश्याएं सातवें गुणस्थातक कैसे पाई जाती हैं?

समाधान-- क्योंकि, इन लेश्यावाले जीवोंके तीव्रतम आदि कषायोंका उदय नहीं पाया जाता है। शेष कथन सुगम है।

अब शुक्ललेश्याके गुणस्थान बतलानेकेलिये सूत्र कहते हैं--

शुक्ललेश्यावाले जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थानतक होते हैं ॥१३९॥

शंका -- जिन जीवोंकी कषाय क्षीण अथवा उपशान्त हो गई है उनके शुक्ललेश्याका होना कैसे संभव है?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, जिन जीवोंकी कषाय क्षीण अथवा उपशान्त हो गई है उनमें कर्मलेपका कारण योग पाया जाता है, इसलिये इस अपेक्षासे उनके शुक्ललेश्याके सद्भाव मान लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

अब लेश्यारहित जीवोंके गुणस्थान बतलानेकेलिये सूत्र कहते हैं।

तेण परमलेस्सिया १ (अलेश्याः अयोगकेवलिनः । स. सि. १. ८.) ॥१४०॥

कथम्? बन्धहेतुयोगकषायाभावात् । सुगममन्यत् ।

लेश्यामुखेन जीवपदार्थमभिधाय भव्याभव्यद्वारेण जीवास्तित्वप्रतिपादनार्थमाह--

भवियाणुवादेण अत्थि भवसिद्धिया अभवसिद्धिया ॥१४१॥

भव्या भविष्यन्ती २ (मु. भविष्यन्तीति ।) सिद्धिर्येषां ते भव्यसिद्धयः । तथा च भव्यसन्ततिच्छेदः स्यादिति चेन्न, तेषामानन्त्यात् । न हि सान्तस्यानन्त्यम्, विरोधात् । सव्ययस्य निरायस्य राशेः कथमानन्त्यमिति चेन्न, अन्यथैकस्याप्यानन्त्यप्रसङ्गात् ३ (मु. प्रसङ्गः ।) । न सव्ययस्यानन्तस्य न क्षयोऽस्तीत्येकान्तोऽस्ति, स्वसंख्येयाभागव्ययस्य राशेरनन्तस्यपि क्षयः ४ (मु. रनन्तस्यापेक्षया तद्वित्र्यादि ।), द्वित्र्यादिसंख्येयराशिव्ययतो न क्षयोऽस्तीत्यभ्युपगमात् ५ (एवं भव्युच्छेओ कोट्टागारस्स वा अवचयति ति । तं नाणंतत्तणओऽणागयकालंबराणं व ॥ जं) । अर्द्धपुदगल

तेरहवें गुणस्थानके आगे सभी जीव लेश्यारहित हैं ॥१४०॥

शंका -- यह कैसे?

समाधान -- क्योंकि, वहांपर बन्धके कारणभूत योग और कषायका अभाव है। शेष कथन सुगम है।

लेश्यामार्गणाके द्वारा जीवपदार्थका कथन करके अब भव्याभव्य मार्गणाके द्वारा जीवोंके अस्तित्वके प्रतिपादन करनेके लिये सूत्र कहते हैं।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भवसिद्ध जीव होते हैं ॥१४१॥

जिन्हें आगे सिद्धि प्राप्त होंगी उन्हें भव्यसिद्ध जीव कहते हैं।

शंका-- इस प्रकार तो भव्यजीवोंकी संततिका उच्छेद हो जायगा?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, भव्यजीव अनन्त होते हैं। हां, जो राशि सान्त होती है उसमें अनन्तपना नहीं बन सकता है, क्योंकि, सान्तको अनन्त माननेमें विरोध आता है।

शंका-- जिस राशिका निरन्तर व्यय चालू है, परंतु उसमें आय नहीं होती है तो उसके अनन्तपना कैसे बन सकता है?

समाधान-- नहीं, क्योंकि, यदि सव्यय और निराय राशिको भी अनन्त न माना जावे तो एकको भी अनन्तके माननेका प्रसंग आ जायगा। व्यय होते हुए भी अनन्तका क्षय नहीं होता है, यह एकान्त नियम नहीं है, इसलिये जिसके संख्यातवें भागका व्यय हुआ है ऐसी अनन्त राशिका क्षय भी है, किन्तु दो-तीन आदि संख्येय राशिके व्ययमात्रसे क्षय नहीं भी है ऐसा स्वीकार किया है।

शंका-- अर्धपुद्गलपरिवर्तनरूप काल अनन्त होते हुए भी उसका क्षय देखा जाता है,